वैदिक परंपरा में योग : एक अध्ययन

विनोद कुमार बुटोलिया
सहायक आचार्य – संस्कृत
एस.आर, पी.जी. कॉलेज, नदबई, भरतपुर

सार :–

वेदों को सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ माना गया है। निःसंदेह वर्तमान में जिस योग क्रिया के महत्व को माना जा रहा है उसकी जड़ें हमें वैदिक परंपरा में इधर–उधर बिखरी दिखाई देती है। माना जाता है कि सृष्टि निर्माण के पश्चात् चार ऋषि अग्नि, वायु, आदित्य एवं अंगिरा को स्वयं ईश्वर ने वेदों के ज्ञान के साथ–साथ योग–क्रिया को भी सीखाया। वेदों का मुख्य विषय अध्यात्म को सर्वोच्च ऊचाईयों तक पहुँचाना है जिसका माध्यम योग–क्रिया है। वेद और उसके सहायक ग्रंथों में, पंच ज्ञानेंद्रियों व कर्मेंद्रियाँ, पंच वायु व महाभूत तथा मन द्वारा निर्मित स्थूल शरीर का वर्णन दिया गया है।

वेदों में वर्णन है कि योग–क्रिया समस्त कार्यों को करने से पूर्व का अभ्यास है। इसके साथ ही योग–क्रिया का मूल उद्देश्य आत्मा से परमात्मा के साथ मिलन का माध्यम बताया गया है। ऋग्वेद में स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि **"यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन सधीनां योगभ्न्वियति"** अर्थात् जो विद्वान बिना योग के कोई भी कर्म करता है, वह पूर्ण नहीं होते।

बीज शब्द :– वेद, परंपरा, योग–क्रिया, आध्यात्मिक, ईश्वर।

अध्ययन उद्देश्य :–

योग न केवल शरीर के लिए औषधि का काम करता है बल्कि योग आत्मा को परमात्मा से मिलन का भी जरिया है। योग कोई नई विद्या नहीं बल्कि यह अति प्राचीन है। योग के माध्यम से सैकड़ों ऋषि–मुनियों ने न केवल अपने शरीर को अमरत्व प्रदान किया बल्कि अलौकिक शक्ति से परिचय भी

किया। मानव शरीर के दो उद्देश्य लोक और परलोक को सुधारना। निःसंदेह योग उसका साधन है। अतः योग की प्राचीनता और महत्व को इंगित करना ही शोध अध्ययन का उद्देश्य है।

अवधारणात्मक विवेचन :–

''योग शब्द की उत्पत्ति संस्कृत धातु **'युज'** से हुई है जिसका अर्थ 'जोड़ना' या 'एकजुट' होना है अर्थात् किसी भी वस्तु से अपने आपको जोड़ना या किसी कार्य में स्वयं को लगाना।''[1]

पाणिनीगण पाठ का विस्तृत अध्ययन पर हमें 3 युज 'धातु' का बोध होता है।

1. **युज समाधौ – दिवादिगणीय :–** 'दिवादिगणीय' युज धातु का अर्थ – समाधि, अर्थात् जब प्रगाढ़ संयोग सुबुम्ना में स्थिर ब्रह्मनाड़ी से होता है वह स्थित समाधि की होती है।
2. **युजिर योगे – रुधादिगणीय :–** 'रुधादिगणीय' युज धातु का अर्थ जोड़ना, जुड़ना मिलना आदि अर्थात् इस दुःख रूप संसार से वियोग तथा ईश्वर से संयोग का नाम ही योग है।
3. **युज संयमने – चुरादिगणीय :–** 'चुरादिगणीय' युज धातु का अर्थ :– संयमन अर्थात् मन का संयम अर्थात् मन को नियंत्रित करने का नाम ही योग है।''[2]

योग की परिभाषा :–

1. पांतञ्जल योग दर्शन के अनुसार – **''योगश्चिवृत्तिनिरोध''** अर्थात चित की वृत्तियों का निरोध ही योग है।
2. सांख्य दर्शन के अनुसार :– **''पुरुष प्रवृत्योर्वियोगेपि योगइत्यमिधीयते''** अर्थात् पुरुष एवं प्रकृति के पार्थक्य को स्थापित कर पुरुष स्व स्वरूप में अवस्थित होना ही योग है।
3. भगवत् गीता में 2 प्रकार की परिभाषा दी गई है।

प्रथम स्थान पर – **''सिद्धासिद्धयों समोभूत्वा समत्वं योग उच्चते''** अर्थात् दुःख–सुःख, लाभ–अलाभ, शत्रु–मित्र, शीत–उष्ण आदि द्वंद्वों में समान भाव रखना ही योग है।''[3]

दूसरे स्थान पर – **''योगः कर्मसु कौशलम्''** अर्थात् कर्तव्य कर्म बंधक न हो इसलिए निष्काम भाव से कर्तव्य करने का कौशल ही योग है। दूसरे शब्दों में कर्मों की कुशलता ही योग है।''[4]

4. वेदों में लिखा है कि – ''मन को संयमित करना ही योग है।''[5]

5. लिंग पुराण में महर्षि व्यास ने कहा है कि **"सर्वार्थ विषयान्तरात्मनों योग उच्यते।"** अर्थात् आत्मा को संपूर्ण विषय की प्राप्ति ही योग है।

6. विष्णु पुराण के अनुसार – **"योगः संयोग इत्युक्तः जीवात्म परमात्मने"** अर्थात् जीवात्मा तथा परमात्मा का पूर्णतया मिलन योग है।

वैदिक परंपरा में योग :–

योग परंपरा एक अत्यंत प्राचीन है जिसकी उत्पत्ति हजारों वर्षों पूर्व हुई थी। यदि ऐसा माने कि जब से सभ्यता का प्रार्दुभाव हुआ, तभी से योग विद्या भी प्रचलित है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। योग विद्या में भगवान शिव को ही आदि योगी तथा आदि गुरू माना जाता है।

भगवान शिव के पश्चात् योग विद्या का सर्वप्रथम वर्णन वेदों में ही प्राप्त होता है। इसके पश्चात् उपनिषदों में इसका उल्लेख हुआ है। वैदिक काल में मन की एकाग्रता को सुदृढ़ करने एवं सांसारिक समस्याओं पर विजय पाने के लिए आश्रम और गुरूकुलों में वेदों की शिक्षा के साथ शस्त्र और योग की शिक्षा भी दी जाती थी।

ऋग्वेद में स्पष्ट वर्णन है कि –

"यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन सधीनां योगमिन्वति।।"[6] अर्थात् योग के बिना ज्ञानी का कोई भी यज्ञकर्म सिद्ध नहीं होता। साथ ही वेदों में समाधि के विषय में कहा गया है कि –

"स धा नो योग आभुवत स राये स पुरध्याम गमद वार्जोभरा स नः।"[7] अर्थात् परमात्मा के सानिध्य से हमें समाधि सिद्ध हो तथा ईश्वर की कृपा से विवेक, ख्याति व ऋतंभरा प्रज्ञा की प्राप्ति हो अर्थात् यहाँ रिद्धि–सिद्धि सहित ईश्वर प्राप्ति की इच्छा की गई है।

"योगे–योगे तवस्तरं वाजेवाजे ध्वामहे। सखाय इन्द्रभूतये।।"[8] अर्थात् योगसिद्धि हेतु ईश्वर से प्रार्थना करते हुए कहा है कि हम अभ्यासी योग समाधि हेतु साधना करते हैं तो उसकी बाधाओं को दूर करने के लिए ऐश्वर्यवान परमात्मा इन्द्र से प्रार्थना करते हैं।

वेदों में शरीर विज्ञान का उल्लेख किया गया है और मानव शरीर की तुलना देवताओं के निवास स्थान से करते हुए कहा गया है कि –

"अष्टचक्र नवद्वारा देवानां पूरोयोध्या।
तस्या हिरण्यमयोः कोशः सवर्गो ज्योतिषावृतः।
तस्मिन हिरण्यमये कोशेऽयरे त्रिपतिष्ठिते।
तस्मिन सद् यक्षामात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदोबिन्दुः।।"[9]

अर्थात् इसमें मानव देह को आठ चक्रों एवं नवद्वारों से युक्त एक अपराजेय देवनगरी कहा गया है। योग की भाँति वेदों में ओंकार को ब्रह्म का स्वरूप माना गया है :– ''ओम एवं ब्रह्म।''

योग में ब्रह्म का साक्षात्कार करना मानव जीवन का परम लक्ष्य माना गया है। इस स्थिति को समाधि माना गया है। पुरुष की सर्वांगीण त्रिपादामृत ज्योति की अनुभूति या साक्षात्कार का नाम योग माना गया है।

''पुण्डरीक नवदांर त्रिभिर्गुणोभिराव्रतृम''[10]

यह शरीर नौ पवित्र नदियों के द्वार और तीन गुणों से घिरी हुई है। अर्थात् पुण्डरीक, नवद्वार, त्रिर्गुण आदि शब्दों का योगशास्त्र में भी परिभाषित किया गया है।

वेदों में अधिकांश ऐसे मंत्र है जिनमें केवल योगपरक अर्थ ही प्राप्त होता है। किंतु व्याख्याकारों ने उनके अर्थों का अनर्थ कर दिया है। वह मंत्रों के वास्तविक भावों को समझ नहीं सके। वास्तव में वेदों में दिये गये मंत्रों का लक्ष्य योग संबंधी अतिवृष्टि का विवेचन देना है और दिया भी है।

''चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोंः सुर्यो अजायत''[11]

अर्थात् यह मनः योगी का मनः है जो योग से और वह इस मन से चन्द्रमा को उद्दीप्ति करता है, इसी प्रकार अपने चक्षुः या चाक्षुष आत्मा से सूर्य नामक तत्व की जागृति करता है।

निष्कर्ष :–

निःसंदेह योग विद्या कोई नयी विद्या नहीं बल्कि एक प्राचीन विद्या है जो हमारे ऋषि–मुनियों के अन्तःकण में नदी की अविरल धारा की तरह सदैव बहती रही है। माना जाता है कि योग की उत्पत्ति ब्राह्मण्ड में मानव जीवन से पूर्व हुई। प्रथम योगी भगवान शिव को माना जाता है। जिन्होंने प्रकृति की गोद में योग की शिक्षा सप्तऋषियों को दी जिसका सर्वप्रथम स्पष्ट उल्लेख वेदों में दिखाई देता है। वेदों में योग महासागर की छलकती लहरों की तरह स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। वेदों में तथा उसके सहायक ग्रंथों में योग मानव जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति का साधन है। इसके द्वारा लौकिक और पारलौकिक उद्देश्यों की पूर्ति होती है। जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण है कि ऋषि–मुनियों ने सर्वप्रथम योग के माध्यम से मन को एकाग्र और सभी कुण्डलियों को जागृत किया और तत्पश्चात् मंत्रों का निर्माण। अतः योग विज्ञान प्राचीन काल में ही नहीं बल्कि आज भी उतना ही महत्व रखता है जितना वैदिक काल में। यदि कहा जाए कि योग सर्वयुग की महत्ती आवश्यकता है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

संदर्भ ग्रंथ

1. इण्डिया टुडे डॉट. कॉम. – योग अध्याय
2. उत्तराखण्ड मुक्त वि.वि. ''योग परिचय अध्याय'' पृ. 2
3. श्रीमद्भगवत्गीता 2/48
4. वही 2/50
5. गूगल, कॉम
6. शर्मा, श्री राम, यजुर्वेद संहिता, युग निर्माण योजना विस्तार इस्ट गायत्री, तपोभूमि, मथुरा, पृ. 6/14
7. ऋग्वेद 1/5/3
8. शर्मा, श्री राम, वही, पृ. 1/30/7
9. अथर्ववेद, 10/1/2/31
10. जोशी, पं. हरिशंकर, वैदिक योग सूत्र, पृ. 94
11. वही, अध्याय 2, पृ. 120